International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 375-378

आर्यसमाजः शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

सुलोचना देवी
Research Scholar Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu Rajasthan, India

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द धर्म समाज आर्य समाज के संस्थापक थे। वे समाज सुधारक और राष्ट्र भाषा "हिन्दी" के प्रचारक के रुप में अधिक प्रचलित हैं। इन सब कार्यों के लिए उन्होने शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये थे और इसी कारण वे शिक्षा शास्त्री के रुप में प्रसिद्ध हुए। वे अपनी भारतीय पद्धति से ही जाने वाली शिक्षा के समर्थक थे। उन्होने अंग्रेजी माध्यम से दी जाने वाली शिक्षा का विरोध किया है और प्राचीन परम्परानुसार वेद उपनिषद और स्मृतियों की शिक्षा पर बल दिया। दयानन्द स्वरस्वती ने शिक्षा के महत्व को जीवन के प्रत्येक पहलू में वर्णित किया।

महर्षि दयानन्द शिक्षा को ज्ञान अथवा विद्या प्राप्त करने का साधन मानते थे। उनके अनुसार वह ज्ञान जिससे ब्रह्मा जीवात्मा और पदार्थों के वास्तविक स्वरुप का बोध होता है, ओर मनुष्य का लौकिक एंव पारलौकिक दृष्टि से शुभ एवं कल्याण होता है। वही शिक्षा है। उनके अपने शब्दों में विद्या में विलास करने वाले मन का निर्माण करना ही शिक्षा है "विद्या में विलास मनसों घृतशील शिक्षा" स्वामी जी ने व्यवहार भानु शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है। जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति करता है और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनन्द नाद करता है, वह शिक्षा है। राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में भी दयानन्द जी सचेत थे। उन्होने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना भी तैयार की थी, और स्थान – स्थान पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करने वाले विद्यालयों की स्थापना की थी। इन विद्यालयों में साक्षरता और व्यवहारिक जीवन का शिक्षा पर अधिक बल दिया था। इस प्रकार हम देखते है कि सैद्धान्तिक रुप से प्राचीन परम्परा के पोषक होते हुए भी वे आधुनिक युग की आवश्यकताओं से आंख नहीं मोचते थे।

स्वामी दयानन्द जी मनुष्य जीवन के चारो पुरुषार्थ धर्म, अर्थ काम, व मोक्ष के समर्थक थे। वे मनुष्य को पहले लौकिक जीवन के लिए और उसके बाद उसे पारलौकिक जीवन के लिए तैयार होने की सलाह देते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षा को वे दोनो ही कार्य करने चाहिए।

उन्हाने शिक्षा का अंतिम उद्देश्य मुक्ति माना है। परन्तु यह बात नहीं है कि उन्होने इस जीवन की वास्तविकता से मुह मोड़ा हो। उन्होने मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक, व्यवसायिक, सभी प्रकार के विकास पर बल दिया है। महर्षि दयानन्द सच्चे अर्थों में भारतीय थे, इसलिए उन्होने भारतीय शिक्षा को पुनः भारतीय बनाने के प्रयत्न किया। स्वामी दयानन्द जी के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए।

महर्षि दयानन्द इसी भौतिक संसार की यथार्थता स्वीकार करते थे। उनके दश्यनानुसार मनुष्य को पहले वस्तु जगत का ज्ञान कराना चाहिए। इस ज्ञान ही सीमा से पदार्थों का वास्तविक ज्ञान एवं उनका मानव कल्याण की दृष्टि से प्रयोग, आचरण की शिक्षा और आन्नद कारी क्रियाऐं होती है। नैतिक विकास के लिए महर्षि का दर्शन था, कि मानव अपने कर्मों का फल भोगता है। मानव अपने कर्मों मानव अपने कर्मों के अनुसार ही दूसरा जीवन प्राप्त करता है और वह उस जीवन में अनेक कर्मों के फल भोगता है वास्तव में मनुष्य नहीं बल्कि उसकी जीवात्मा होती है, मनुष्य तो भोग का माध्यम होता है। इसी प्रकार वह मुक्ति के लिए वैदिक ज्ञान कर्म को सर्वश्रेष्ट साधन मानते थे। उनके अनुसार मनुष्य को इन गूढ़ रहस्यों का ज्ञान शिक्षा के द्वारा ही प्रदान किया जा सकता है। महर्षि मानते थे कि प्रत्येक मानव का जीवन नैतिक मूल्यों व आदर्शों के आधार पर स्थापित होना चाहिए। वे मानते थे कि शिक्षा के उचित प्रसार के द्वारा ही बालकों के जीवन में उच्चा आदर्श स्थापित किये जा सकते है। उन्होने शिक्षा के द्वारा करोड़ों मनुष्यों के हित कामना का कार्य किया है।

मानवता व विश्वबन्धुत्व का विकास का उद्देश्य

स्वामी दयानन्द ने मनुष्य के व्यक्तिगत हित के साथ – साथ सामाजिक हित को भी समान महत्व दिया है। स्वामी दयानन्द मानव धर्म को सबसे बड़ा धर्ममानते थे। उनके अनुसार सम्पूर्ण मानवता की रक्षा ही मानव की आत्म रक्षा है। महर्षि परस्पर द्वेष, कुटिलता, भेदभाव का विरोध करते थे। वे संसार के सभी प्रणियों को एक मानते थे। उनके अनुसार जन साधारण में प्रेम, त्याग, भाई चारे की भावना का विकास करना भी शिक्षा का परम लक्ष्य होना चाहिए। महर्षि के अनुसार यह भौतिक जगत का सत्य और इसे वे ब्रहम द्वारा निर्मित मानते थे। इस प्रकार इस जगत में रह रही मनुष्य जाति के सेवा तथा अन्य प्रकार के प्राणी जगत की सेवा करना मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य है और इस उद्देश्य की पूर्ति शिक्षा के विकास से ही सम्भव है। महर्षि मानव को सृजनकर्ता परमात्मा की श्रेष्ट कृति मानते थे, उनके अनुसार जाति–पाति कुछ नहीं है, बल्कि जैसे किसी के कर्म हैं उसे वैसी ही वर्ण में परिमाणित होना चाहिए वे कहते हैं। जिस पुरुष में जिस वर्ण के गुण हों उसको उसी वर्ण का अधिकार देना चाहिए। ऐसा अवस्था रखने से सब मनुष्य प्रगतिशील हो जाते है।

शारीरिक विकास का उद्देश्य

महर्षि दयानन्द यह बात भी स्वीकार करते थे, शरीर सब धर्मों का साधन है। इसलिए वे मनुष्य के शारीरिक विकास को शिक्षा का लक्ष्य मानते थे। इसके लिए उन्होने ब्रहमचार्य, पालन, व्यायाम, खेल–कूद, व यौगिक क्रियाओं पर विशेष बल दिया है। भारतीय परम्परा के अनुसार पूर्ण ब्रहमचारी वह कहलाता है, जो जितेन्द्रिय होता है, आठों प्रकार के मनुष्य से दूर रहता है और मन वाणी दर्शन से शुद्ध होता है। उनके अनुसार पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य ही समाज का कार्य कर सकता है। इसलिए विद्यालयों में शिक्षा का स्तर इस प्रकार का होना

चाहिए कि बालकों को पूर्ण रुप से स्वस्थ रखा जा सकें, ताकि वे अपने समाज, देश, राष्ट्र व विश्व के निर्माता बन सकें। स्वामी जी विद्यार्थियों को व्यायाम की शिक्षा देते थे, और समय समय पर उनकी परीक्षा भी लिया करते थे। उन्होने व्यायाम की शिक्षा देते हुए कहा कि व्यायाम खान–पान की तरह नित्य करना चाहिए, बलवान पुरुष हमेशा सुखी व प्रसन्न रहते हैं। निर्बल मनुष्य का जीवन सार रहित रोगों का घर और नरक का धाम बना रहता है। इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने शैक्षिक लक्ष्यों में शारीरिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया है। क्योंकि शारीरिक रुप से पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य ही धर्म–कर्म के कार्य करके अपना व समाज का निर्माण कर सकता है।

मानसिक व बौद्धिक विकास का उद्देश्य

महर्षि दयानन्द जी का दृष्टिकोण अति व्यापक था वे इस भौतिक संसार की यर्थाथता को स्वीकार करते थे। उनके दर्शनानुसार मनुष्य को पहले वस्तुजगत का ज्ञान कराना चाहिए, इस ज्ञान की सीमा में पदार्थों का वास्तविक ज्ञान एंव उनका मानव कल्याण की दृष्टि से प्रयोग, आचरण की शिक्षा और आन्नदकारी क्रियायें होती है। इसी प्रकार बौद्धिक विकास से उनका तात्पर्य सद्ज्ञान के विकास से था। सद्ज्ञान वह ज्ञान है, जिसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति अथवा मोक्ष प्राप्त होता है। सद्ज्ञान की आवश्यकता तो भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जीवनों को सुखमय बनाने के लिए होती है। इनके बिना धर्म अर्थ, काम व मोक्ष किसी की भी प्राप्ति असम्भव है। सदगुणों से युक्त मानव अपना व समाज का कल्याण कर सकता है। स्वामी जी के अनुसार वह शिक्षा का सबसे प्रमुख उद्देश्य है। इस प्रकार मानसिक व वैदिक विकास से उनका तात्पर्य था कि अपनी बुद्धि का सही व उचित उपयोग करना, उचित दुःख व्यसनों से स्वयं की रक्षा करना तथा सामिाजिक बुराईयों में स्वय को संकल्पित न करना अपनी बुद्धि के द्वारा इस प्रकार के कार्य करना कि उनका आधार धर्म, कर्म व परोपकार हो अर्थात अशुभ दर्शनों को अशुभ आचारों को शुभ दर्शन व आचारों द्वारा भीतर से निकाल देना। उनको अपने निकट नही आने देना चाहिए। इस प्रकार मानसिक व बौद्धिक विकास के अन्तगर्त मानव के बौद्धिक गुणों को लिया गया है। महर्षि दयानन्द के अनुसार जो बुद्धिमान मनुष्य यदि पावक के समान पवित्र जल के समान कोमल सिंह के समान पराक्रम करने वाले और वायु के समान बलिष्ट होकर अन्याय को निवृत करें, वे व्यापक प्रसार द्वारा बड़ी आसानी से किये जा सकते है। क्योकि शिक्षा मानव की दर्शन धारा बदल सकती है।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

महर्षि दयानन्द ने निश्चित तौर पर किसी पाठ्क्रम की रचना तो नहीं की हैं। परन्तु पाठ्यक्रम, सिद्धान्तों का वर्णन अवश्य किया है। महर्षि जी प्राचीन आश्रम व्यवस्था में विश्वास करते थे, इसलिए उन्होने बच्चों को 25 वर्ष तक की आयु तक ब्रहचर्य का पालन करने एंव अध्ययन करने का सुझााव दिया है। उनके अनुसार बालक की शिक्षा गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है। इसलिए गर्भ के समय माता को शुद्ध आचरण, सात्विक भोजन, धार्मिक कार्य आदि करने चाहिए तथा किसी प्रकार की कुलषित दर्शन मन मे नहीं आने देने चाहिए। जन्म से लेकर 5 वर्ष की आयु तक माता – पिता को अपने बच्चे के लालन – पालन के साथ साथ शिक्षा की भी व्यवस्था करनी चाहिए। उनके अनुसार आयु स्तर पर बच्चों को खेलकूद की क्रियाऐं करानी चाहिए। स्वामी जी के अनुसार पांच वर्ष से 8 वर्ष तक शिक्षा का भार उनके माता पिता पर होना चाहिए। उनके अनुसार इस काल में सदाचार व ज्ञान की बातें आरम्भ कर देनी चाहिए तथा बच्चों को वर्णो का उच्चारण व आचरण की शिक्षा देनी की बात करते है। आठ से 25 वर्ष तक गुरुकुल अथवा सबसे पहले सभी बच्चों को ब्रहम्चर्य का पालन करना चाहिए। आठ–वर्ष से ग्यारह वर्ष तक बच्चों को माता पिता द्वारा ज्ञान को शुद्ध एवं दृढ़ किया जाए। इस काल में व्याकरण की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। 12 वर्ष की आयु तक मनुस्मृति, वाल्मिकी रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा दी जानी चाहिए। 15 वर्ष तक पूर्व मीमांस न्याय, योग, सारण्य और वेदों का अध्ययन बालकों को कराया जाये। 15 – 21 वर्ष तक के विद्यार्थियों को बैद्यनाथ धर्नुविद्या, सैन्य शिक्षा, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, कानून, गायन, भूगोल व खगोल की शिक्षा दी जानी चाहिए।

शिक्षण पद्धति

स्वामी जी ने शिक्षण विधि और वैदिक विधि में कोई अन्तर नहीं किया है और प्रायः वैदिक विधि का ही समर्थन किया है। उनके अनुसार अध्यापक और विद्यार्थी दोनो को ब्रहमचर्य का पालन करना चाहिए तथा मन वाणी एवं शरीर को शुद्ध करके शिक्षा कार्य आरम्भ करना चाहिए। शिक्षण के लिए उन्होने उपदेश अथवा व्याख्यान विधि, स्वाध्याय विधि, प्रत्यक्षनुभव विधि तर्क विधि, व्यावहारिक विधि, आदि का वर्णन किया है।

उपदेश एवं व्याख्यान विधि

हमारी प्राचीन परम्परा के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन करना शिक्षण है। इस दृष्टि से उपदेश का अर्थ अध्यापक की उस क्रिया से है जिसके द्वारा वह बच्चों को बताता है, ऐसा करो, ऐसा मत करों, क्या उचित है, क्या अनुचित है, दयानन्द जी इस विधि को प्रमुखविधिमानते थे उनका कहना था कि आठ वर्ष की आयु में माता पिता को अपने बच्चों को गुरु आश्रमों में भेज देना चाहिए। जहां गुरु अपने शिष्यों को उपदेश दे।

शिक्षा और शिक्षक

स्वामी जी के अनुसार शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को ही ब्रहमचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए। उनके अनुसार अध्यापक सत्य ज्ञान का दृष्य होता है। उनके अभाव में शिक्षार्थी को सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता है। स्वामी जी इस बात पर भी बल देते है कि अध्यापक व छात्र का पिता पुत्र तुल्य सम्बन्ध होना चाहिए।

महर्षि जी मानते थे जब तीन उतम शिक्षक अर्थात एक माता दूसरा पिता तथा तीसरा आचार्य हो तभी मनुष्य ज्ञानवाना हो सकता है। उनके अनुसार जितना माता से सन्तानों को उपदेश व उपकार पहुचता है उतना अन्य किसी से नहीं। उनके के अनुसार माता बालक को सदा उतम शिक्षा देती है।जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी प्रकार की कुचेष्ठा न करें। इस तरह महर्षि जी 5 वर्ष तक माता 5 से 7 वर्ष तक पिता को उच्च शिक्षक मानते है। इसके पश्चात बालक को योग्य और विद्धान बनाने के लिए उसे किसी अच्छे शिक्षक के पास भेजना उचित मानते है। क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षक तो माता पिता ही होते है।। उनके अनुसार वे माता पिता अपने बच्चे के पूर्ण बैरी है जिन्होने अपने बच्चों को पूर्ण शिक्षा नही दिलवाई है। माता पिता पूर्ण कत्वर्य है कि अपने बच्चो।को पूर्ण शिक्षा प्रदान करवाए।

शिक्षक और शिक्षार्थी

महर्षि दयानन्द विद्यार्थी को गुरु के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन का उपदेश देते हैं। उनका कहना था कि विद्यार्थी

किसी गुरुसे तभी कुछ सीख सकता है तब वह सीखने के लिए जिज्ञासु हो, सत्य का पालन करता हो, शुद्धाचरण करने वाला हो और एकाग्र चित्त से अध्ययन की और प्रवृत हो। महर्षि दयानन्दके अनुसार विद्यार्थी को अध्यापक के अनुशासन में रहना चाहिए और नियमित, संयमित और ब्रहचर्य का जीवन व्यतीत करना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षक को भी ब्रहमचर्य का पालन करना चाहिए। इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी कहते थे कि शिक्षार्थी को शिक्षक से पिता तुल्य व्यवहार मिलना चाहिए। दयानन्द सरस्वती ने शिक्षार्थी के महत्व को स्वीमार किया है उन्होने एक अच्छा शिक्षार्थी उसे माना है जो गुरु सत्कार भावना से ओत–प्रोत हो। संयम शील व प्रयत्नशील हो।

विद्यालय

विद्यालयों के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द के दर्शन परम्परावादी थे। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए वे पारिवारिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते थे। आठ वर्ष की आयु पूरी करने के बाद करने के बाद बच्चों का उपनयन संस्कार हेा फिर वे गुरु गृह में प्रवेश करें।

अपने आदर्शों के आधार पर उन्होने अनेक गुरुकुलों की स्थापना की। राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में भी दयानन्द जी सचेत थे। उन्होने शिक्षा की एक राष्ट्रीय योजना भी तैयारी की और स्थान – स्थान पर हिन्दी माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था करने वाले विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों में साक्षरता और व्यवहारिक जीवन की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था।

धार्मिक शिक्षा

स्वामी जी धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। धर्म शिक्षा के अभाव में वे शिक्षा को अधूरी मानते थे। उनके अनुसार आचरण ही धर्म होता है। (आचारः परमो धर्मः) उन्होने आचरण की शिक्षा पर सबसे अधिक बल दिया है। महर्षि दयानन्द ने शुद्ध आचरण की शिक्षा को ही धर्म शिक्षा का नाम बताया है। वे मानते थे कि धर्म तो कर्मात्मक है। वह पुरुषार्थ से उपार्जित है। क्रिया से निष्पन्न होता है। इसलिए ज्ञानियों ने धर्म को ऐहिक और पारलोकिक सुख सिद्धि का साधन बताया है इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने समाज संस्कार करते समय क्रियातम्क धर्म का निरुपण किया है। उन्होने कहा है कि पाप और परोपकार पुण्य है। उन्होने अपने ग्रन्थों में गृहस्थादि आश्रमों को और चारों वर्णों के मोक्ष के लिए धर्म को साधन के रुप में वर्णित किया है। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है कि किसी को भी उम्र के बिना नहीं रहना चाहिए। वे बताते हे कि ऋग्वेद में लिखा है कि ईश्वर पुरुषर्थी मनुष्य पर कृपा करता है। आलस्य करने वाले पर नहीं। इसलिए सब मनुष्यों को पुरुषर्थी होकर ही ईश्वर की कृपा का भागी होतना चाहिए।

स्त्रीशिक्षा

भारतीय संस्कृति में नारी को उच्च स्थान प्राप्त है, पर पता नहीं क्यों ब्राहमणकाल में उन्हे शिक्षा से वंचित कर दिया गया था। स्वामी जी ने इस बात को पुनः बताया है जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता"

आर्य समाज ने नारी जाति के उत्थान के लिए पुरुषों की भांति नारियों के लिए भी शिक्षा को आवश्यक बताया है। महर्षि दयानन्द नारी शिक्षा के बहुत बड़ें समर्थक थे। उन्होने स्त्री जाति के सुधार का परम कार्य किया है। शास्त्र रीति से उनकों वेदाधिकार दिया है महिलाओं की महता का जितना उन्होने वर्णन किया है उतना किसी अन्य आर्चाय ने नहीं किया है। आर्य समाज ने स्त्रियों के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है कि स्त्रियों को ब्रहमचर्य धारण व विद्या को ग्रहण अवश्य करना चाहिए। आर्यवत के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद, युद्धविद्या को अच्छी प्रकार से जानती थी। यदि ऐसा न होता वो कैकयी आदि स्त्रियां दशरथ आदि राजाओं के साथ संग्राम में कैसे जा सकती थी। स्त्रियों को व्याकरण धर्म, वैद्यक, गणित और शास्त्र–विद्या अवश्य सीखनी चाहिए। इस प्रकार जिस नारी शिक्षा का वर्णन हम आज के युग में करते है, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उस समय यह नारी शिक्षा का महान दर्शन देशवासियों के सामने रखा था।

जन शिक्षा

महर्षि दयानन्द मानव के पूर्ण विकास व उत्थान के लिए शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान देते थे। वे जन साधारण की आवश्यकताओं व समस्याओं के प्रति पूर्ण सचेत थे। उन्होने साधारण लोगों को भी शिक्षा के प्रति सचेत किया। उन्होने जन साधारण लोगों को आम भाषा हिन्दी में वेदों के धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण करके भौतिक व आध्यात्मिक शिक्षा के ज्ञान से जन साधारण के दिलो दिमाग को प्रज्वलित किया। उन्होने जाति– पाति के भेद भाव को मिटाकर शिक्षा को प्रत्येक मनुष्य के सार्वगीण विकास के लिए उपयोगी बातया है। शिक्षा में वे वेद पठन को भी महत्व देते थे। उनके अनुसार वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना सब आर्यों का परम धर्म है। उनके अनुसार अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए। महर्षि दयानन्द ने ही आवश्यकीय सिद्धान्त को उद्धघोषित किया था। वे अनिवार्य शिक्षा के पक्षपाती थे। उनके अनुसार पांचवे एंव आठने वर्ष के उपरान्त कोई भी अपने बच्चों को घर में रखें।

व्यावसायिक शिक्षा

स्वामी दयानन्द जी व्यावसायिक शिक्षा को भी स्वीकार करते थे। उन्होने क्षेत्र बड़ा सुकुचित रखा। उन्होने यह बात पूरी जान ली थी कि विदेशी वस्तुओं की भरमान से यहां के लाखों परिश्रमी निकम्में हो रहे हैं। उनके पास आजीविका का कोई साधन नहीं रहा है। उनके आकाश भेदी भवन इसी देश की कृतक्रम विश्वकर्माओं के द्वारा बनाये जाते थे। उनको सुसज्जित करने के लिए भारत की चित्रशालाओं के चित्रकारों से ही अद्भूत चित्र प्राप्त हो जाते थे। यही कारण है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी शिल्प कला के विकास पर बल देते थे। वे चाहते थे कि देशवासियों को अच्छी से अच्छी शिल्पकला से सम्बन्धित शिक्षा प्राप्त हो सके। ताकि वे अपना रोजगार प्राप्त कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अशोक, ''आर्य समाज एक चिन्तन'', प्रथम संस्करण, 1996
2. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधी सभा का साप्ताहिक पत्र, ''आर्य समाज'' 18 जनवरी से 24 जनवरी 2004
3. जगतरात आर्य, ''युग निर्माता स्वामी दयानन्द, ''संस्करण, 1996ण
4. डॉ॰ इन्द्र विद्यावाचस्पति ''आर्य समाज का इतिहास भाग–1 दिल्ली।
5. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार, ''आर्य समाज की उपलब्धियां, प्रथम संस्करण, 1975

6. डॉ॰ धर्मदेव विद्यार्थी ''डी॰ ए॰ वी॰ आंदोलन का इतिहास'' (1886 से 1947) संस्करण, 2003
7. डॉ॰ सत्येकु विद्यालंकार, प्रो॰ हरिदत वेदालंकार एवं डॉ॰ भवानी लाल, भारतीय आर्य समाज का इतिहास, भाग–4, प्रथम संस्करण, 1985